ध्यान दें:

2

सुभाषित-2

अतिथि सत्कार गृहस्थों में एक महान धर्म है। अतः सभी गृहस्थों को ही धर्म का पालन करना चाहिए। भाग्य ही सब प्रकार के कार्यों का नियामक है। परन्तु ऐसा विचार कर कार्य के लिए प्रयत्न को नहीं छोड़ना चाहिए। आलस्य ही मनुष्यों का एक महान शत्रु है। सभी मनुष्यों को आलस्य का त्याग करना चाहिए। इस प्रकार की नीतियों का ज्ञान हम इस पाठ के पढ़ने से प्राप्त करेंगे। और प्रकृत जन भी इसे पढ़ने से निर्णय ले सकते हैं। इस पाठ में नौ श्लोक है। इसके पढ़ने से हम महान ज्ञान को अर्जित करते है। इससे अवश्य ही हमें अत्यन्त आनन्द प्राप्त होगा।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे:

- अतिथिसत्कार विषयक ज्ञान को प्राप्त कर पाने में;
- भाग्य ही बलवान है इसे समझ पाने में;
- दुर्जनों के साथ संगति से कैसी अवस्था होती है। इस विषय में ज्ञान प्राप्त कर पाने में;
- प्रकृति से बन्धु जनों के लक्षणों को जान पाने में;
- श्लोक में स्थित पदों का अन्वय कर पाने में;
- श्लोकों की व्याख्या कर पाने में;

2.1) मूलपाठ

अरावप्युचितं कार्यमातिथ्यं गृहमागते ।
छेत्तुः पार्श्वगतां छायां नोपसंहरते द्रुमः॥1॥

शशिदिवाकरयोर्ग्रहपीडनम्
गजभुजंगमयोरपि बन्धनम्

ध्यान दें:

मतिमतां च विलोक्य दरिद्रतां
विधिरहो बलवानिति मे मतिः॥2॥

षड् दोषाः पुरुषेणेह हातव्या भूतिमिच्छता
निद्रा तन्द्रा भयं क्रोधः आलस्यं दीर्घसूत्रता॥3॥

आलस्यं हि मनुष्याणां शरीरस्थो महान् रिपुः।
नास्त्युद्यमसमो बन्धुः कृत्वा यं नावसीदति॥4॥

यदा किञ्चिज्ज्ञोऽहं द्विप इव मदान्धः समभवं
तदा सर्वज्ञोऽस्मीत्यभवदवलिप्तं मम मनः।
यदा किंचित् किंचिद् बुधजनसकाशादवगतं
तदा मूर्खोऽस्मीति ज्वर इव मदो मे व्यपगतः॥5॥

शक्यो वारयितुं जलेन हुतभुक् छत्रेण सूर्यातपो
नागेन्द्रो निशितांकुशेन समदो दण्डेन गोगर्दभौ।
व्याधिर्भेषजसंग्रहैश्च विविधैर्मन्त्रप्रयोगैर्विषं।
सर्वस्यौषधमस्ति शास्त्रविहितं मूर्खस्य नास्त्यौषधम्॥6॥

दुर्जनेन समं सख्यं प्रीतिंचापि न कारयेत्।
उष्णो दहति चाङ्गारः शीतः कृष्णायते करम्॥7॥

उत्सवे व्यसने चौव दुर्भिक्षे राष्ट्रविप्लवे।
राजद्वारे श्मशाने च यतिष्ठति स बान्धवः॥8॥
उद्यमेन हि सिध्यन्ति कार्याणि न मनोरथैः।
न हि सुप्तस्य सिंहस्य प्रविशन्ति मुखे मृगाः॥9॥

2.2) मूल पाठ

शशिदिवाकरयोर्ग्रहपीडनम्
गजभुजंगमयोरपि बन्धनम्
मतिमतां च विलोक्य दरिद्रतां
विधिरहो बलवानिति मे मतिः॥1॥

अन्वय- शशिदिवाकरयोः ग्रहपीडनं गजभुजंगमयोः अपि बन्धनं, मतिमतां द्ररिद्रतां च विलोक्य में मतिः भवति अहो! विधिः बलवान् इति।

अन्वयार्थः- चन्द्रमा और सूर्य को राहु के ग्रहण की पीड़ा, हाथी और साँप का भी मन्त्रादि से बन्धन और बुद्धिमान व्यक्तियों को द्ररिद्रता में देखकर मेरी समझ अर्थात् बुद्धि होती है। ओह! भाग्य ही बलवान है।

सरलार्थः- चन्द्रमा और सूर्य जैसे दीप्तिमान् भी राहु का ग्रास होते हैं, हाथी और साँप जैसे शक्तिमान भी मन्त्रादि से बन्धन में होते हैं, सभी शास्त्रों को जानने वाला महा ज्ञानी भी दरिद्र होते है। यह सब देखकर मेरी समझ में यही आता है कि भाग्य ही बलवान है।

तात्पर्यार्थः- प्रस्तुत इस श्लोक में भाग्य की बलवत्ता वर्णित की गई है। समुद्रमन्थन से प्राप्त अमृत को पाने के लिए देवता वेश को धारण करके राहु नामक राक्षस वहाँ आ गया। परन्तु चन्द्र और सूर्य के

ध्यान दें:

द्वारा उसके स्वरूप का प्रकाशन किया गया। फिर विष्णु ने अपने चक्र से उसका सिर अलग कर दिया, परन्तु अमृत को पीने के कारण से वह नहीं मरा। इसलिए चन्द्रमा और सूर्य के ऊपर द्वेष से राहु उन दोनों का ग्रास करता है, ऐसी पौराणिक कथा है। यह महान नभ सुबह सूर्य की उज्ज्वल रश्मि से उद्भासित होता है। और रात्रि में सूर्यास्त होने से चन्द्रमा की ज्योत्सना प्रकाशित होती है। सीमा रहित महान आकाश को जो सूर्य और चन्द्रमा प्रकाशित करते हैं। वे चन्द्रसूर्य भी राहु का ग्रास होते हैं। इसी प्रकार बड़े शरीर वाले सबका नाश करने में समर्थ हाथी भी सामान्य शृंखला से बंधा होता है, और जिसके विष से मृत्यु निश्चित है, उसके जैसा महान विषवान साँप भी मन्त्रों के बल से बंधा होता है। सभी शास्त्रों को पढ़े हुए महाज्ञानी विद्वान भी कभी अर्थ का उपार्जन करने में असमर्थ होते हैं। उनका सारा जीवन दरिद्रता से पूर्ण होता है। यह सब कुछ भाग्य से ही होता है। पूर्वजन्म में किए गए कर्म ही भाग्य कहलाता है। भाग्य ही सब कर्मों का नियामक होता है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी

1. शशिदिवाकरयो:- शशिश्च दिवाकरश्च- इतरेतरद्वन्द्वसमास
2. ग्रहपीडनम्- ग्रहेण पीडनम् - तृतीया तत्पुरुष समास
3. गजभुजंङ्गमयो: - गज: च भुजङ्गम् च - इतरेतरद्वन्द्व समास
4. मतिमताम् - मति: एषाम् अस्ति इति मतिमन्त:

सन्धि युक्त शब्द

1. शशिदिवाकरयोर्ग्रहपीडनम् - शशिदिवाकरयो: + ग्रहपीडनम्।
2. गजभुजंङ्गमयोपि - गजभुजंङ्गमयो + अपि।
3. विधिरहो - विधि: अहो।

प्रयोग परिवर्तन- शशिदिवाकरयो: ग्रहपीडनं गजभुजंगमयो: अपि बन्धनं च मतिमतां दरिद्रतां विलोक्य में मतिना भूयते अहो! विधिना बलवता भूयते इति।

छन्द परिचय- इस श्लोक में द्रुतविलम्बित छन्द है।

अरावप्युचितं कार्यमातिथ्यं गृहमागते।
छेत्तु: पार्श्वगतां छायां नोपसंहरते द्रुम:।।2।।

अन्वय- गृहम् आगते अरौ अपि उचितम् आतिथ्यं कार्यम्, द्रुम: पार्श्वगतात् छेत्तु: छायां न उपसंहरते।

अन्वयार्थ:- घर आए हुए शत्रु का भी उचित रूप से आतिथ्य सत्कार करना चाहिए। वृक्ष पास आए हुए व्यक्ति को भी छाया देता है, शाखा को काटने से छाया का उपसंहरण नहीं करता है।

सरलार्थ:- शत्रु यदि कभी भी अतिथि रूप में घर आता है। तब भी उचित रूप से उसका आतिथ्य सत्कार अवश्य ही करें। जैसे वृक्ष को काटने वाला वृक्ष को काटे जाने से थका हुआ उस विद्यमान वृक्ष की छाया का आश्रय प्राप्त करता है, तब वह वृक्ष अपनी छाया को नहीं समेटता है।

तात्पर्यार्थ:- इस श्लोक में आतिथ्य रूपी गृहस्थ धर्म के विषय में बताया गया है। आतिथ्य के विषय में तो शास्त्रों में बहुत वर्णित है। अतिथि देवो भव इत्यादि श्रुतियाँ वहाँ प्रमाण है। आतिथ्य ही गृहस्थों

ध्यान दें:

का एक महान धर्म है। इस धर्म का पालन न करे तो बड़े पाप के भागी होते हैं। अतिथि यदि दु:खी होकर घर से जाता है, तो वह अतिथि अपने पापकर्मादि को घर के स्वामी को प्रदान करके, गृहस्वामी का पुण्य ग्रहण करता है। अत: अतिथि सत्कार के विषय में अवश्य ही सावधानी से रहना चाहिए। कोई शत्रु भी यदि अतिथि रूप में घर आता है तो उसे शत्रु मानकर अपमान नहीं करना चाहिए। अतिथि के समान उसका भी यथा रूप सत्कार करना चाहिए। यह ही गृहस्थ धर्म है। इसका उदाहरण जैसे- वृक्ष को काटने वाला जब वृक्ष काटने से सूर्य के ताप से थका होता है तब वे ताप से रक्षा के लिए उस वृक्ष की छाया का आश्रय लेता है। परन्तु वह वृक्ष उन्हें शत्रु मानकर उनसे अपनी छाया को नहीं समेटता है। उन्हें भी शरणागत मानकर आश्रय देता है। अत: शत्रु का भी अतिथि सत्कार अवश्य करें। अन्यथा घर का स्वामी पाप को प्राप्त करता है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी

1. कार्यम्- कृ धातु+ ण्य प्रत्यय
2. आतिथ्यम्- अतिथि + ष्यञ प्रत्यय
3. आगते- आ+गम् धातु+ क्त प्रत्यय पु. सप्तमी एकवचन।
4. छेत्तु: - छिद् धातु - तृच् प्रत्यय षष्ठी एकवचन।
5. उपसंहरते- उप+सम्+ हृ धातु लट् लकार प्रथम पुरुष एकवचन।

सन्धि युक्त शब्द

1. अपावपि- अरौ+ अपि।
2. अप्युचितम् - अपि+ उचितम्। यण सन्धि।
3. पार्श्वगताच्छायाम् - पार्श्वगतात् + छायाम्। श्चुत्व सन्धि।
4. नोपसंहरते - न + उपसंहरते। गुण सन्धि।

प्रयोग परिवर्तन- गृहम् आगते अरौ अपि उचितम् आतिथ्यं कुर्यात्, द्रुमेन पार्श्वगतात् छेत्तु: छाया न उपसंह्रियते।

छन्द परिचय- इस श्लोक में अनुष्टुप् छन्द है।

षड् दोषा: पुरुषेणेह हातव्या भूतिमिच्छता
निद्रा तन्द्रा भयं क्रोध आलस्यं दीर्घसूत्रता॥3॥

अन्वय- इह भूतिम् इच्छता पुरुषेण षड् दोषा: हातव्या:, निद्रा तन्द्रा भयं क्रोध: आलस्यं दीर्घसूत्रता।

अन्वयार्थ:- इस संसार में सम्पन्न होने की इच्छा वाले व्यक्ति को छ: दोषों का त्याग करना चाहिए। निद्रा, जड़ता, भय, क्रोध, आलस और काम को टालने की प्रवृत्ति।

सरलार्थ:- इस जगत में जिसकी समृद्धि को प्राप्त करने की इच्छा है। उन्हें नींद, जड़ता, भय, क्रोध, आलस्य और उदासीनता - इन छ: दोषों का त्याग करना चाहिए। उनके त्याग से ही वृद्धि सम्भव होती है।

ध्यान दें:

तात्पर्यार्थः- प्रस्तुत इस श्लोक में निद्रादि छः दोषों के त्याग के विषय में कहा गया है। हमारे संसार में जिस पुरुष की उन्नति करने की इच्छा है, उन्हें तो इन दोषों का अवश्य ही त्याग करना चाहिए। वे दोष हैं- निद्रा, तन्द्रा, भय, क्रोध, आलस्य और उदासीनता। निद्रा अर्थात् अधिक सोना, रात्रि में उचित समय पर ही हमें सोना चाहिए। उसके अतिरिक्त तो कभी नहीं सोना चाहिए। तन्द्रा अर्थात् कार्य के समय निद्रा का भाव। तन्द्रा हो तो कार्य सिद्धि नहीं होता। एवं भय को भी हमें अवश्य ही त्यागना चाहिए। भय के कारण से बहुत से कार्य सिद्ध नहीं होते है। इसी प्रकार आलस तो मनुष्य का महान शत्रु होता है। आलसी व्यक्ति कभी भी अपने कार्य में सिद्ध नहीं होता है। एवं कार्य में दीर्घसूत्रता भी एक महान दोष है किसी छोटे से कार्य को भी बहुत समय तक टालने की प्रवृत्ति को दीर्घसूत्रता कहते है। इस दोष को भी अवश्य ही छोड़ना चाहिए। इन दोषों को त्यागने से हमें विजय की प्राप्ति होती है, सभी मनोरथ स्वयं ही सिद्ध होते हैं। परन्तु जो इनके वशीभूत होता है उसका तो अवश्य ही विनाश होता है। इन दोषों को त्यागने से ही समृद्धि सम्भव है, अन्यथा कभी भी समृद्धि सम्भव नहीं होती।

व्याकरणात्मक टिप्पणी

1. हातव्याः - हा धातु+ तव्य प्रत्यय प्रथमा बहुवचन।
2. इच्छता - इष् धातु+ शतृ प्रत्यय तृतीय एकवचन।

सन्धि युक्त शब्द

1. पुरुषेणेह- पुरुषेण + इह।
2. हातव्या भूतिम् - हातव्याः + भूतिम्।
3. क्रोध आलस्यम्- क्रोधः + आलस्यम्।

प्रयोग परिवर्तन- इह भूतिम् इच्छन् पुरुषः षड् दोषान् जह्यात्। निद्रा तन्द्रा भयं क्रोधः आलस्यं दीर्घसूत्रता।

छन्द परिचय- इस श्लोक में अनुष्टुप् छन्द है।

आलस्यं हि मनुष्याणां शरीरस्थो महान रिपुः।
नास्त्युद्यमसमो बन्धुः कृत्वा यं नावसीदति॥4॥

अन्वय- आलस्यं हि मनुष्याणां शरीरस्थः महान् रिपुः। उद्यमसमः बन्धुः नास्ति। कृत्वाऽयं न अवसीदति।

अन्वयार्थः- आलस्य ही मनुष्य के शरीर का महान शत्रु है। उद्यम जैसा कोई मित्र नहीं है। कार्य करने वाला व्यक्ति दुःखी नहीं होता है।

सरलार्थः- आलस्य मनुष्य के शरीर का महान शत्रु है, जो अहितकर है। उद्यम के जैसा मनुष्यों का दूसरा मित्र नहीं हैं। जो उद्यमशील व्यक्ति है वह कभी भी दुःखी नहीं होता है।

तात्पर्यार्थः- प्रस्तुत श्लोक में आलस्यरूपी दोष की निंदा की गई है। इस जगत में अनेकों आलसी व्यक्ति हैं। परन्तु यह आलस एक महान शत्रु है। यह ही हमारे शरीर में रहकर हमारी हानि करता है। आलस्य हो तो किसी भी कार्य की सिद्धि नहीं होती है। यह कार्य की सिद्धि में बड़ी रूकावट उत्पन्न करता है। अतः जो कार्य सिद्धि की इच्छा करते हैं। उन्हें अवश्य ही आलस्य को त्यागना चाहिए। कार्य की सिद्धि के लिए प्रयत्न अति आवश्यक होता है। प्रयत्नशील व्यक्ति किसी भी कार्य को सिद्ध कर

ध्यान दें:

सकता है। यह प्रयत्न मित्र के समान कार्य की सिद्धि में सहायता करता है। सोये हुए सिंह के मुख में मृग स्वयं आकर प्रवेश नहीं करते हैं। मृग के शिकार के लिए तो सिंह को दौड़ना इत्यादि प्रयत्न अवश्य ही करना चाहिए। प्रयत्नशील व्यक्ति कभी भी दु:ख को प्राप्त नहीं करते हैं। इसलिए कार्य की सिद्धि और सुख प्राप्ति के लिए हमें भी आलस को त्यागकर प्रयत्न करना चाहिए।

व्याकरणात्मक टिप्पणी

1. शरीरस्थ: - शरीरे तिष्ठति।
2. उद्यमसम:- उद्यमेन सम: तृतीय तत्पुरुष।
3. कुर्वाण: - कृ धातु + शानच् प्रत्यय, प्रथमा एकवचन।

सन्धि युक्त शब्द

1. नास्त्युद्यमसम: - नास्ति + उद्यमसम:।
2. कुर्वाणो न - कुर्वाण: + न।
3. नावसीदति- न + अवसीदति।

प्रयोग परिवर्तन- आलस्येन हि मनुष्याणां शरीरस्थेन महाता रिपुणा भूयते। उद्यमसमेन बन्धुना न भूयते, कुर्वाणेन न अवसीद्यते।

छन्द परिचय- इस श्लोक में अनुष्टुप् छन्द है।

यदा किञ्चिज्ज्ञोऽहं द्विप इव मदान्ध: समभवं
तदा सर्वज्ञोऽस्मीत्यभवदवलिप्तं मम मन:।
यदा किंचित् किंचिद् बुधजनसकाशादवगतं
तदा मूर्खोऽस्मीति ज्वर इव मदो मे व्यपगत:।।5।।

अन्वय- यदा अहं किञ्चिज्ज्ञ:, तदा अहं द्विप इव मदान्ध: समभवम्, तदा, 'सर्वज्ञ: अस्मि।' इति मम मन: अवलिप्तम् अभवत्। यदा बुधजनसकाशात् किञ्चित् किंचित् अवगतम्, तदा मूर्ख: अस्मि इति ज्वर: इव में मद व्यपगत:।

अन्वयार्थ:- जब मैं अल्पज्ञान वाला था। तब मैं हाथी के समान मदमस्त था। तब मैं सर्वज्ञ हूँ, मेरे मन में गर्व उत्पन्न हुआ। जब पण्डितों के पास से कुछ-कुछ ज्ञान प्राप्त किया, तब मैं मूर्ख हूँ ऐसा ज्वर के समान मेरा दर्प चला गया।

सरलार्थ:- जब मुझे कुछ ज्ञान हुआ तब मैं सर्वज्ञ हूँ। ऐसा मानकर मैं हाथी के समान मदमत्त हुआ। परन्तु पण्डितों के पास जाकर जब उनके ज्ञान को देखा। तब उनकी अपेक्षा मैं महा मूर्ख हूँ ऐसा समझा। उस समय में मेरा जो दर्प उत्पन्न हुआ था वह पल भर में ही चला गया।

तात्पर्यार्थ:- प्रस्तुत इस श्लोक में अल्प ज्ञान से ही मनुष्यों में जो दर्प देखा जाता है उसी विषय का वर्णन किया गया है। इस जगत में कोई भी मनुष्य जब कुछ ज्ञान को प्राप्त करता है। तब उसे महान अंहकार होता है। जैसे मदमस्त हाथी सामने आए हुए सब का अपनी सूंड अथवा पैरों से नाश करता है। उसी प्रकार वह व्यक्ति भी गुरुओं अथवा अन्य सम्मानीय जन का सम्मान नहीं करता है। सभी के साथ दुष्ट आचरण करता है। वह सोचता है कि वह सर्वज्ञ है। जगत में उसकी अपेक्षा कोई भी ज्ञानी नहीं है। इस प्रकार से उसका सम्पूर्ण मन अहंकार से पूर्ण होता है। परन्तु वह जब ज्ञानियों के पास जाता है। वहाँ

ध्यान दें:

उनके ज्ञान को देखता है, तब उसको अनुभव होता है कि इनकी अपेक्षा उसका ज्ञान बहुत कम है। उस समय में उसकी प्रकृति मूर्खता को प्रकाशित करती है। उचित औषधि के सेवन से रोगी का ज्वर जैसे थोड़े समय में चला जाता है। उसी प्रकार उस मदान्ध व्यक्ति का अंहकार सम्पूर्णरूप से नष्ट होता है। वस्तुत: थोड़े ज्ञान से मनुष्य में जो अहंकार उत्पन्न होता है, वह ही विनाश का प्रधान हेतु होता है। इसलिए ज्ञान प्राप्ति में कभी भी अहंकार का प्रकाशन नहीं करना चाहिए।

व्याकरणात्मक टिप्पणी

1. किंञ्चिज्ज्ञ: - कुछ जानता है।
2. मदान्ध: - मद से अन्धा, तृतीया तत्पुरुष समास।
3. सर्वज्ञ:- सब जानता है।
4. बुधजनसकाशात् - बुधजनानां सकाश: षष्ठी तत्पुरुष समास।
5. अवगतम् - अव+ गम् धातु, उपसर्ग क्त प्रत्यय।
6. व्यपगत: - वि+ अप्+गम् क्त प्रत्यय पु. ।

सन्धि युक्त शब्द

1. किंञ्चिज्ज्ञोऽहम् - किञ्चिद् + ज्ञ: + अहम्
2. द्विप इव - द्विप: + इव।
3. सर्वज्ञोऽस्मीत्यभवदवलिप्तम्- सर्वज्ञ:+ अस्मि+ इति+ अभवत्+ अवलिप्तम्।
4. मूर्खोऽस्मीति- मूर्ख: + अस्मि + इति।
5. मदो में - मद:+ मे

प्रयोग परिवर्तन- यदा मया किञ्चिज्ज्ञेन, तदा मया द्विपेन इव मदान्धेन समभूयत, तदा सर्वज्ञेन भूयते इति मम मनसा अवलिप्तेन अभूयत। यदा बुधजनसकाशात् कि्ंचित् किंचित् अवगतवान, तदा मूर्खेन भूयते इति ज्वरेण इव में मदेन व्यपगतेन अभूयत।

छन्द परिचय- इस श्लोक में शिखरिणी छन्द है।

शक्यो वारयितुं जलेन हुतभुक् छत्रेण सूर्यातपो
नागेन्द्रो निशितांकुशेन समदो दण्डेन गोगर्दभौ।
व्याधिर्भेषजसंग्रहैश्च विविधैर्मन्त्रप्रयोगैर्विषं।
सर्वस्यौषधमस्ति शास्त्रविहितं मूर्खस्य नास्त्यौषधम्॥6॥

अन्वय- जलेन हुतभुक् वारयितुं शक्य:, छत्रेण सूर्यातप:, निशितांकुशेन समद: नागेन्द्र: दण्डेन गोगर्दभौ, भेषजसंग्रहै: व्याधि:, विविधै: मन्त्रप्रयौगै: च विषम्। सर्वस्य शास्त्रविहितम् औषधम् अस्ति, परन्तु मूर्खस्य औषधं नास्ति।

अन्वयार्थ:- जल से अग्नि का, छत्र से धूप का, अंकुश से मदमत्त हाथी का, दण्ड से बैल और गधे का, औषधि से रोग का, मन्त्रप्रयोग के द्वारा विष का शमन कर सकते हैं। शास्त्रों में सभी की औषधि विद्यमान है, परन्तु मूर्ख की औषधि नहीं है।

ध्यान दें:

सरलार्थ:- जल द्वारा अग्नि का शमन कर सकते हैं। छत्र धारण करने से सूर्य के तेज से रक्षा प्राप्त कर सकते हैं। तीक्ष्ण अंकुश से मदमस्त हाथी को भी बाँध सकते हैं। डण्डे के प्रहार से बैल और गधे को शांत कर सकते हैं। औषधि के सेवन से रोग का परिहार हो सकता है। मन्त्र के प्रयोग से सर्प के विष का भी शमन कर सकते हैं। इस प्रकार से सभी समस्याओं का समाधान शास्त्र में कहा गया है, परन्तु मूर्ख की मूर्खता के परिहार के लिए कोई उपाय नहीं है।

तात्पर्यार्थ:- प्रस्तुत इस श्लोक में मूर्खों के मूर्खत्व की निंदा की गई है। मूर्ख व्यक्ति तो सब जगह निन्दित हैं। अगर पुत्र मूर्ख हो, तो उसका पिता जीवन के पद पर अपमान को सहता है। इसलिए कहा गया है कि पुत्र जन्म से मरा ही हो तो थोड़े समय को ही दु:ख होता है। परन्तु मूर्ख पुत्र हो जाए तो सदैव ही वह पिता को दु:ख देता है। इसलिए कोई भी पिता मूर्ख पुत्र की कामना नहीं करता है। अगर अग्नि अधिक हो तो वहाँ पानी के छिड़काव से अग्नि को शान्त कर सकते हैं। सूर्य के ताप से रक्षा के लिए छत्र को धारण कर रक्षा कर सकते हैं। अगर हथिनी उन्मत हो तो उसके सामने आए सबका ही वह अपने पैरों से नाश करती है। परन्तु उन्मत हथिनी को भी तीक्ष्ण अंकुश से बाँध सकते हैं। दण्ड का प्रहार करके तो बैल, गधे आदि पशु भी अपने वश में आ जाते हैं। उत्तम वैद्य की औषधि के सेवन करने से महान रोग का भी निवारण हो सकता है। विषधारी साँप के दंश से दंशित व्यक्ति प्राय: मरे हुए के समान होता है फिर भी मन्त्र प्रयोग से उसके विष का त्याग कर सकते हैं। इस प्रकार से जीवन में सभी समस्याओं का समाधान कर सकते हैं। शास्त्रों में तो सब प्रकार का समाधान कहा गया है। सब समस्याओं का समाधान कर सकते हैं फिर भी मूर्खत्व का निवारण सौ बार प्रयत्न करके भी नहीं कर सकते।

व्याकरणात्मक टिप्पणी

1. सूर्यातप:- सूर्यस्य आतप:, षष्ठी तत्पुरुष समास।
2. नागेन्द्र:- नागानाम् इन्द्र, षष्ठी तत्पुरुष समास।
3. निशितांकुशेन - निशित: च असौ अंकुश:, कर्मधारय समास
4. गोगर्दभौ- गौ: च गर्दभ: च, इतरेतरद्वन्द्व समास।
5. भेषजसंग्रहै:- भेषजानां संग्रहा:, तृतीय तत्पुरुष समास
6. मन्त्रप्रयोगै: - मन्त्राणां प्रयोग: षष्ठी तत्पुरुष समास
7. शास्त्रविहितम्- शास्त्रेण विहितम् तृतीय तत्पुरुष समास।

सन्धि युक्त शब्द

1. शक्यो वारयितुम्- शक्य:+ वारयितुम्। विसर्ग+ सन्धि।
2. व्याधिर्भेषजसंगहै: - व्याधि: + भेषजसंग्रहै:। विसर्ग सन्धि।
3. भेषजसंग्रहैश्च - भेषजसंग्रहै:+ च। विसर्ग सन्धि, श्चुत्व सन्धि।
4. विविधैर्मन्त्रप्रयोगै:- विविधै:+ मन्त्रप्रयोगै: विषम्। विसर्ग सन्धि।
5. सर्वस्यौषधम् - सर्वस्य + औषधम्। वृद्धि सन्धि।
6. नास्त्यौषधम्- न + अस्ति + औषधम्। यण् सन्धि।

ध्यान दें:

प्रयोग परिवर्तन- जलेन हुतभुजं वारयितुं शक्नुयात्, छत्रेण सूर्यातपम्, निशितांकुशेन समदं नागेन्द्रं, दण्डेन गोगर्दभौ, भेषजसंग्रहै: व्याधिम्, विविधै: मन्त्रप्रयौगै: च विषम्। सर्वस्य शास्त्रविहितेन औषधेन भूयते, परन्तु मूर्खस्य औषधेन न भूयते।

छन्द परिचय- इस श्लोक में शार्दूलविक्रिडित छन्द है।

दुर्जनेन समं सख्यं प्रीतिंचापि न कारयेत्।
उष्णो दहति चाङ्गार: शीत: कृष्णायते करम्॥7॥

अन्वय- दुर्जनेन समं प्रतिं सख्यं चापि न कारयेत्। उष्ण: अंगार: करं दहति शीतश्च करं कृष्णायते।

अन्वयार्थ:- दुर्जनों से शत्रुता और मित्रता कभी नहीं करनी चाहिए। जलते हुए कोयले के स्पर्श से हाथ जल जाता है और ठण्डे कोयले का स्पर्श हाथ को काला करता है।

सरलार्थ:- दुर्जनों के साथ कभी भी मित्रता नहीं करनी चाहिए और शत्रुता भी नहीं करनी चाहिए। क्योंकि दोनों ही परिस्थिति में वह दुर्जन हानि ही करता है। जैसे जलता हुआ कोयला हाथ को जलाता है और वह ही कोयला यदि ठण्डा होता है तो हाथ को काला करता है।

तात्पर्यार्थ:- प्रस्तुत श्लोक में दुर्जनों की निन्दा की गई है। इस जगत में बहुत से दुष्ट व्यक्ति हैं। जीवन के प्राय: सभी समय में दुष्ट दिखाई देते हैं। अनेकों बार अज्ञानतावश वे हमारा नुकसान करते हैं। उनका स्वभाव ही ऐसा है कि प्रारम्भ में मित्रता करते हैं। फिर विश्वास को उत्पन्न कर मौका मिलते ही बड़ा अनिष्ट करते हैं। इसलिए दुर्जन व्यक्ति पास आकर सहायता आदि करके मित्रता करे फिर भी उनके साथ मित्रता कभी नहीं करनी चाहिए। दुर्जनों के साथ कोई दुष्ट आचरण करता है तो वे अवश्य ही उसे मन में रखकर भविष्य में हानि करते हैं। जैसे कोयला जब गर्म होता है तब उसका स्पर्श करते हैं तो अवश्य ही हाथ जलता है। वही कोयला जब ठण्डा होता है तब उसका स्पर्श करें तो हाथ काला होता है। इसलिए हाथ की रक्षा के लिए कोयले का स्पर्श न करें। उसी प्रकार दुर्जनों की उपेक्षा करें।

व्याकरणात्मक टिप्पणी

1. सख्यम्- सख्यु: भाव:।
2. कारयेत् - कृ धातु + णिच् प्रत्यय + विधि लिङ् प्रथम पुरुष एकवचन
3. कृष्णायते- कृष्ण इव आचरयति।

सन्धि युक्त शब्द

1. वैरंचापि- वैरम् + चापि।
2. चापि- च + अपि।
3. उष्णो दहति- उष्ण: दहति।
4. चाङ्गार: - च + अंगार:।

प्रयोग परिवर्तन- दुर्जनेन समं वैरं सख्यं चापि न कार्येत। उष्णेन अंगारेण कर: दह्यते शीतेन च कर: कृष्णाय्यते।

छन्द परिचय- यह श्लोक अनुष्टुप् छन्द में है।

ध्यान दें:

उत्सवे व्यसने चौव दुर्भिक्षे राष्ट्रविप्लवे।
राजद्वारे श्मशाने च यतिष्ठति स बान्धवः॥8॥

अन्वय- यः उत्सवे व्यसने चौव दुर्भिक्षे राष्ट्रविप्लवे च राजद्वारे श्मशाने च तिष्ठति स बान्धवः भवति।

अन्वयार्थः- जो व्यक्ति विवाहादि उत्सव के समय में, विपत्तिकाल में, अन्न अभाव के समय में, अपने देश के और दूसरे राज्य के लिए आक्रमण के समय में, राजदरबार में, और शव दाह स्थान पर भी रहता है, वह ही सच्चा बन्धु होता है।

सरलार्थः- जो व्यक्ति विवाहादि उत्सव के समय में, विपत्ति के समय में, सूखे अन्न के अभाव के समय में, युद्ध समय में, विचारालय,न्यायालय अर्थात् राजदरबार में, और शव दाह स्थान पर सभी परिस्थिति में हित की इच्छा करता है, सहायता करता है, वह ही वास्तव में बन्धु होता है।

तात्पर्यार्थः- इस श्लोक में स्वभावकि बन्धु के लक्षण को कहा गया है। इस जगत में जीवन पथ पर चलते समय में अनेक बन्धुजन अर्थात् सम्बन्धी प्राप्त होते हैं। परन्तु उनमें सभी हितैषी नहीं होते हैं। प्रायः मनुष्य अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिए मित्रता करते हैं। सम्पूर्ण संसार में कुछ ही स्वाभाविक सम्बन्धी प्राप्त करते हैं। व्यक्तियों के सुख के समय में बहुत से मित्र होते हैं, परन्तु जब उस व्यक्ति का बुरा समय होता है, तब सुख के समय में आए उन बन्धुओं में से कोई भी सहायता के लिए प्रयत्न नहीं करता। इसलिए शास्त्रों में स्वभावतः बन्धु का उपाय कहा गया है। जो विवाह उत्सव के समय पर सम्बन्धियों के साथ आनन्द करता है और बन्धुओं को विपत्तिकाल में भी उचित मार्ग का प्रदर्शन करके सहायता करता है। और किसी सम्बन्धी को जब अन्न सम्बन्धी कष्ट होता है तब अन्नदान आदि से उसकी सहायता करता है। और जब किसी दूसरे देश का राजा अपने देश पर आक्रमण करता है तब प्राणों की रक्षा के लिए वास स्थान दान से जो बन्धुओं की सहायता करता है। और इस प्रकार से प्रतिपक्ष से किसी सम्बन्धी के ऊपर झूठा अपवाद लगाता है उसके विचार के समय पर अच्छी युक्तियों से उसकी अपवाद से रक्षा करता है, और परिवार में कोई भी मर जाए तो श्मशान में दाह के समय पर उस कार्य के सम्पादन के लिए सहायता करता है। वह ही वास्तव में बन्धु होता है। परन्तु इस समय में तो बन्धु दुर्लभ ही है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी

1. राष्ट्रविप्लवे- राष्ट्रस्य विप्लवः, षष्ठी तत्पुरुष समास।
2. राजद्वारे- राज्ञः द्वारं, षष्ठी तत्पुरुष समास।
3. तिष्ठति- स्था धातु, लट् लकार, प्रथम पुरुष एकवचन।

सन्धि युक्त शब्द

1. चौव - च + एव।
2. यस्तिष्ठति- यः तिष्ठति।
3. स बान्धवः- सः + बान्धवः।

प्रयोग परिवर्तन- येन उत्सवे व्यसने चौव दुर्भिक्षे राष्ट्रविप्लवे च राजद्वारे श्मशाने च स्थीयते तेन बान्धवेन भूयते।

छन्द परिचय- इस श्लोक में अनुष्टुप् छन्द है।

उद्यमेन हि सिध्यन्ति कार्याणि न मनोरथैः।
न हि सुप्तस्य सिंहस्य प्रविशन्ति मुखे मृगाः॥9॥

अन्वय- उद्यमेन कार्याणि सिद्धयन्ति, न तु मनोरथैः, सुप्तस्य सिंहस्य मुखे मृगाः न हि प्रविशन्ति।

अन्वयार्थः- उद्योग से अनुष्ठित कार्यों की सिद्धि होती है, न कि इच्छा मात्र से। सुप्त सिंह के मुख में मृग स्वयं प्रवेश नहीं करते हैं।

सरलार्थः- कार्य की सिद्धि के लिए केवल इच्छा करते हैं तो कार्य की सिद्धि नहीं होती। उसकी सिद्धि के लिए प्रयत्न अवश्य ही करना चाहिए। जैसे भोजन के लिए सिंह को दौड़ करके मृग का शिकार करना चाहिए, सोये हुए सिंह के मुख में मृग स्वयं प्रवेश नहीं करते हैं।

तात्पर्यार्थः- प्रस्तुत इस श्लोक में पौरुषता का वर्णन किया गया है। हमारे संसार में आलसी व्यक्ति तो कार्यों की सिद्धि के लिए इच्छा मात्र करते हैं। परन्तु आलस्य के कारण उसकी सिद्धि के लिए कोई प्रयत्न नहीं करते हैं। वे सोचते हैं कि भाग्य ही सभी कार्यों का साधक है। इसलिए कार्य की सिद्धि के लिए प्रयत्न करने से कोई लाभ नहीं होता। अतः आलसियों का मत है ईश्वर में विश्वास स्थापित करके कार्य की सिद्धि के विषय में चिन्ता न करें। परन्तु विद्वानों का मत भिन्न ही है। उनके मत में इच्छा मात्र से किसी भी कार्य की सिद्धि नहीं होती है। कार्य की सिद्धि के लिए अवश्य ही प्रयत्न करना चाहिए। पूर्व जन्म में जो कर्म किए वह ही भाग्य कहलाता है। इसलिए भाग्य में हस्तक्षेप नहीं कर सकते हैं। अतः भाग्य के विषय में विचार न करके सभी को प्रयत्न करना चाहिए। जैसे कोई शेर मृग को खाता है ऐसा सोचकर यदि सोता है, तब वह कभी भी मृग को नहीं खा सकता है। मृग को खाने के लिए वह दौड़ करके ही मृग का शिकार करे। उसके बाद ही वह मृग को खा सकता है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी

1. मनोरथैः - मनसः रथाः षष्ठी तत्पुरुष।
2. प्रविषन्ति- प्र + विष् लट् लकार प्रथम पुरुष बहुवचन।

प्रयोग परिवर्तन- उद्यमेन कार्यैः सिद्धयते, न तु मनोरथैः, सुप्तस्य सिंहस्य मुखे मृगैः न हि प्रविष्यते।

छन्द परिचय- यह श्लोक अनुष्टुप् छन्द में है।

पाठगत प्रश्न 2.1

1. घर आए शत्रु का क्या करें?
2. वृक्ष किससे छाया को नहीं समेटता है?
3. किन दोनों का ग्रहपीड़न होता है?
4. कौन बलवान है?
5. पुरुष को कितने दोषों को त्यागना चाहिए? और वे कौन-से हैं?
6. मनुष्यों का महान शत्रु कौन है?
7. कौन दु:खी नहीं होता है?

पाठ-2

सुभाषित-2

ध्यान दें:

ध्यान दें:

8. थोड़ा जानने वाला व्यक्ति कैसा होता है?

9. 'यदा किंञ्चिज्ज्ञोऽहम्' इस श्लोक में क्या छन्द है?

10. जल से किसको बुझाया जा सकता है?

11. किसकी औषधि नहीं है?

12. कैसा कोयला हाथ को जलाता है?

13. कौन वास्तविक बन्धु है?

14. कार्य किससे सिद्ध होते है?

15. किसके मुख में मृग प्रवेश नहीं करते हैं?

16. (क.)- स्तम्भ से (ख.)- स्तम्भ को मिलाओ-

(क.) स्तम्भ	**(ख.) स्तम्भ**
1. आतिथ्यम्	क. षट्
2. दरिद्रता	ख. रिपु:
3. दोषा:	ग. रिपु:
4. बन्धु:	घ. निशितांकुशेन
5. आलस्यम्	ङ. अरौ
6. नागेन्द्र:	च. शीत: अंगार:
7. करं कृष्णयते	छ. मतिमताम्
8. आलस्यं	ज. उद्यम

पाठ सार

चन्द्र सूर्य जैसे दीप्तिमान भी राहु का ग्रास होते है, हाथी सर्प के समान शक्तिमानों को भी शृंखला और मन्त्रादि का बन्धन होता है। सभी शास्त्रों को जानने वाले महाविद्वान भी दरिद्र होते हैं। यह सब देखकर के भाग्य ही सभी का नियामक है ऐसा ज्ञात होता है। अगर शत्रु कभी भी अतिथि रूप में घर आता है, तब उचित रूप से उसका भी आतिथ्य सत्कार अवश्य ही करें। जैसे वृक्ष को काटने वाला व्यक्ति वृक्ष को काटने से थक जाने पर उस काटे हुए वृक्ष की छाया का ही आश्रय लेता है। तब वह वृक्ष उससे अपनी छाया को नहीं समेटता है। इस जगत में जो व्यक्ति उन्नति की इच्छा करता है, उसे निद्रा, जड़ता, भय, क्रोध, आलस्य, और उदासीनता ये छ: दोषों को त्यागना चाहिए। इनके त्याग से ही उन्नति सम्भव होती है। आलस्य मनुष्य के शरीर का महान शत्रु है, जो बड़ा अहित करता है। प्रयत्न के समान मनुष्य का दूसरा बन्धु नहीं है। जो प्रयत्नशील व्यक्ति है वह कभी भी दु:खी नहीं होते। जब व्यक्ति थोड़ा ज्ञान प्राप्त करता है, तब मै सर्वज्ञ हूँ ऐसा मानकर हाथी के समान मदमत्त होता है। परन्तु विद्वानों के पास जाकर वह जब उनके ज्ञान को देखता है, तब उनकी अपेक्षा मैं महा मूर्ख हूँ उसका ज्ञान होता है। उस समय

ध्यान दें:

में जो उसका दर्प उत्पन्न हुआ था वह क्षण भर में ही नष्ट हो जाता है।

जल के द्वारा अग्नि का शमन कर सकते हैं, छाते को धारण करने से सूर्य के प्रचण्ड ताप से रक्षा कर सकते हैं। डण्डे के प्रहार से बैल और गधे को भी शान्त कर सकते हैं। औषधि के सेवन से रोग का प्रहार कर सकते हैं। मन्त्र के प्रयोग से साँप के विष का भी शमन कर सकते हैं। इस प्रकार से सभी समस्याओं का समाधान शास्त्रों में कहा गया है। परन्तु मूर्ख की मूर्खता के परिहार के लिए कोई उपाय नहीं है। दुर्जन के साथ कभी भी मित्रता नहीं करनी चाहिए। किन्तु शत्रुता भी न करें। क्योंकि दोनों ही परिस्थितियों में दुष्ट व्यक्ति हानि ही करता है। जैसे जलता हुआ कोयला हाथ को जलाता है। वह कोयला ही अगर ठण्डा हो तो हाथ को काला करता है। जो व्यक्ति विवाहादि उत्सव के समय में, बुरे वक्त में, दुर्भिक्ष में, युद्ध में, न्यायालय में और दाह संस्कार में सदैव सभी परिस्थितियों में हित की इच्छा करता है और सहायता करता है, वह ही वास्तविक बन्धु होता है। कार्य सिद्धि के लिए जो केवल इच्छा करते हैं, वह कार्य को सिद्ध नहीं करते हैं। उसकी सिद्धि के लिए अवश्य ही प्रयत्न करना चाहिए। जैसे भोजन के लिए सिंह को दौड़कर के ही मृग का शिकार करना चाहिए। सोये हुए सिंह के मुख में मृग स्वयं आकर प्रवेश नहीं करता है।

आपने क्या सीखा

- घर आए हुए शत्रु का भी उचित आतिथ्य सत्कार करना चाहिए।
- भाग्य ही सब कार्यों का नियामक है।
- निद्रा आदि छः दोषों के त्याग के बिना उन्नति सम्भव नहीं होती।
- प्रयत्नशील व्यक्ति कभी भी दु:खी नहीं होता है।
- दुर्जन व्यक्ति हमेशा ही निन्दनीय है।
- प्रयत्न से ही सभी कार्यों की सिद्धि होती है।

पाठान्त प्रश्न

1. अतिथि सत्कार के विषय में संक्षेप में लिखिए।
2. भाग्य की बलवत्ता को यथाग्रन्थ प्रतिपादित करें।
3. अल्पज्ञान वाले मनुष्य में उत्पन्न हुए मद का संक्षेप में वर्णन कीजिए।
4. मूर्ख की स्थिति को यथा ग्रन्थानुसार प्रतिपादित कीजिए।
5. बन्धु के लक्षण को यथा ग्रन्थानुसार वर्णित कीजिए।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

1. उचित आतिथ्य।
2. पास गए हुए काटने वाले व्यक्ति से।

ध्यान दें:

3. सूर्य और चन्द्रमा
4. भाग्य
5. छः निद्रा, तन्द्रा, भय, क्रोध, आलस्य और दीर्घ सूत्रता।
6. आलस्य
7. कार्य करने वाला
8. हाथी के समान मद से अन्धा होता है
9. शिखरिणी
10. अग्नि को
11. मूर्ख की
12. गर्म
13. जो उत्सव में, विपत्ति में, दुर्भिक्ष में, युद्ध में, राजदरबार में, और श्मशान में रहता है।
14. प्रयत्न से
15. सोए हुए सिंह के
16. 1-ङ, 2-छ, 3-क, 4-ज, 5-ख, 6-घ, 7-च, 8-ग,